सिर्फ सोशल मीडिया से न बनेगा जनमत

राहुल वर्मा | फेलो, सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च

अगर चुनाव नतीजों को सोशल मीडिया के माध्यम से बदला जा सकता, तो दिल्ली या पश्चिम बंगाल जैसे विधानसभा चुनावों को भारतीय जनता पार्टी नहीं हारती।

अपनी 'भारत जोड़ो यात्रा' के दौरान कांग्रेस नेता राहुल गांधी ने चुनावी लोकतंत्र में सोशल मीडिया की भूमिका पर सवाल उठाकर एक पुरानी बहस को फिर से हवा दे दी है। उनका मानना है कि सोशल मीडिया के माध्यम से चुनावों में धांधली हो सकती है और यह किसी भी पार्टी को जिता सकने में सक्षम है। उनका यह दावा सच के कितना करीब है?

निश्चय ही, पिछले दो दशकों में भारतीय समाज में सोशल मीडिया का असर बढ़ा है, खासतौर से राजनीति और चुनाव के लिहाज से। 2019 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा था कि जो नेता भाजपा की उम्मीदवारी का टिकट चाहते हैं, उन्हें न सिर्फ सोशल मीडिया पर अपनी उपस्थिति दिखानी होगी, बल्कि उनको वहां सक्रिय भी रहना होगा। उनकी मंशा थी कि सोशल मीडिया का इस्तेमाल करके भाजपा उम्मीदवार पार्टी की बातों को मजबूती से लोगों के बीच रख सकें। अभी कुछ समय पहले ऐसी रिपोर्ट भी आई है कि फेसबुक जैसे मंच किसी एक पार्टी के लिए मददगार साबित हो रहे हैं। जाहिर है, राहुल गांधी के ताजा बयान के बाद पुराने तमाम मसले भी सुर्खियों में आ गए हैं।

क्या वाकई सोशल मीडिया जनादेश बदल सकता है? इस सवाल का जवाब तलाशने से पहले हमें कुछ तथ्यों से रूबरू हो जाना चाहिए। आज देश की करीब आधी आबादी सोशल मीडिया पर मौजूद है। सीएसडीएस-लोकनीति द्वारा अक्तूबर में किए गए सर्वे को मानें, तो वाट्सएप, यू-ट्यूब और फेसबुक सोशल मीडिया के शीर्ष तीन मंच हैं। इसके बाद इंस्टाग्राम और ट्विटर का स्थान आता है। सर्वे के मुताबिक, देश की 34 फीसदी आबादी वाट्सएप का सक्रियता से इस्तेमाल करती है, जबकि नौ प्रतिशत कभी-कभार। 57 प्रतिशत लोग तो वाट्सएप पर हैं ही नहीं। इसी तरह, यू-ट्यूब पर 27 प्रतिशत लोग सक्रिय हैं, जबकि 14 फीसदी यदा-कदा यहां आते हैं। 59 फीसदी भारतीय इससे दूर हैं। फेसबुक पर भी 23 फीसदी लोगों की सक्रियता है और 63 फीसदी की दूरी। शेष 14 फीसदी कभी-कभार ही इसका इस्तेमाल करते हैं। ट्विटर पर, जिसके बारे में आम धारणा है कि यह लोगों की सोच को कहीं ज्यादा प्रभावित करता है, महज छह प्रतिशत भारतीय सक्रिय हैं, जबकि 81 फीसदी निष्क्रिय और 13 प्रतिशत यदा-कदा यहां आते हैं। यहां एक और तथ्य यह भी है कि ज्यादातर लोग सोशल मीडिया का इस्तेमाल मनोरंजन के लिए करते हैं या फिर नेटवर्किंग या दोस्ती बढ़ाने अथवा संदेशों के आदान-प्रदान के लिए। राजनीतिक समाचार या विचार पढ़ने वाले लोगों की संख्या सोशल मीडिया पर फिलहाल काफी कम है।

बावजूद इसके, राजनीतिक पार्टियों के लिए सोशल मीडिया जनता व कार्यकर्ताओं के बीच अपनी बात रखने का एक बड़ा माध्यम है। भारतीय जनता पार्टी और आम आदमी पार्टी जैसे दलों के पास इसका काफी अच्छा ढांचा है, जबकि कांग्रेस अथवा अन्य पार्टियां इस मुकाबले में कमजोर हैं। खुद प्रधानमंत्री के सोशल मीडिया के अलग-अलग मंचों पर ढेर सारे फॉलोअर हैं। यह बताता है कि अन्य दलों की तुलना में भारतीय जनता पार्टी इसकी ताकत से बखूबी परिचित है और इस पर उसने काफी पहले से गंभीरता से काम करना शुरू भी कर दिया है।

सोशल मीडिया या इंटरनेट की जो पहुंच बनी है, वह स्मार्टफोन के कारण संभव हो सकी है। आज हर पांच में से एक भारतीय कंप्यूटर अथवा लैपटॉप रखता है, जबकि देश की करीब दो तिहाई आबादी स्मार्टफोन का इस्तेमाल करती है। यहां यह भी समझना होगा कि सोशल मीडिया पर सक्रिय जनसांख्यिकी में अंतर काफी ज्यादा है। जैसे, यदि आप युवा हैं, शहरी क्षेत्र के बाशिंदे हैं, मध्यम वर्ग, शिक्षित व पुरुष हैं, तो अपने विपरीत वर्गों की तुलना में आपकी उपस्थिति सोशल मीडिया पर कहीं ज्यादा है। यानी, बुजुर्गों की तुलना में युवा सोशल मीडिया पर अधिक सक्रिय हैं। इसी तरह, ग्रामीण क्षेत्र के लोग, महिलाएं और निरक्षरों की उपस्थिति सोशल मीडिया पर तुलनात्मक रूप से कम है। इस जनसांख्यिकी को अगर पिछले कुछ चुनावों के आधार पर तौलें, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि इन वर्गों के लोग पहले से ही भाजपा के पक्ष में मत डालते रहे हैं। इसलिए यह कहना गलत होगा कि आज भाजपा को चुनावों में जो बढ़त हासिल है, वह सिर्फ सोशल मीडिया की वजह से है।

सोशल मीडिया का बेहतर ढांचा होने या उस पर किसी की मजबूत उपस्थिति का अर्थ यह नहीं है कि उसे चुनाव में हमेशा ही बढ़त मिलेगी। भाजपा इसलिए अच्छा कर रही है, क्योंकि उसका ऑनलाइन और ऑफलाइन (सांगठनिक ताकत), दोनों ढांचा मजबूत है और उनमें तारतम्यता है। अगर जनादेश को सोशल मीडिया के माध्यम से बदला जा सकता, तो दिल्ली या पश्चिम बंगाल जैसे विधानसभा चुनावों को भाजपा नहीं हारती। दक्षिण के राज्यों में भी उसका संगठन जमीन पर कमजोर है, जिसके कारण पार्टी इन राज्यों में अब तक अपनी पकड़ नहीं बना सकी है। स्पष्ट है, जब तक पार्टियां वास्तविक व आभासी, दोनों मोर्चों पर काम नहीं करेंगी, वे प्रभावशाली नहीं हो सकेंगी।

इसका यह मतलब नहीं है कि चुनावी माहौल पर सोशल मीडिया असर नहीं डालता। यह असल में मुद्दा-निर्धारण में मददगार होता है। इसमें उसे पारंपरिक मीडिया माध्यमों से मदद मिलती है, जो सोशल मीडिया की वायरल खबरों को और चर्चा में ले आते हैं। यानी, जिस पार्टी के पास सोशल मीडिया का जितना अच्छा ढांचा होगा, वह उतनी ही कुशलता से अपनी बातें जनता में परोस सकेगी। इसी कारण हम यह तो कह सकते हैं कि चुनावों में सोशल मीडिया की भूमिका बढ़ी है, लेकिन वह नतीजों को पूरी तरह से बदल सकता है, इस पर फिलहाल संदेह है। अमेरिकी कांग्रेस (संसद) भी अब तक अपने यहां के चुनावों में सोशल मीडिया के बेजा इस्तेमाल को कहां साबित कर सकी है! लिहाजा, राहुल गांधी के बयान कमोबेश वैसे ही हैं, जैसे विभिन्न नेता व दल अपनी हार का दोष ईवीएम पर मढ़ते हैं। वह यदि किसी ठोस प्रमाण के साथ अपनी बात रखते, तो कहीं ज्यादा सार्थक होते। उम्मीद है, इस बहस के बाद अपने देश में सोशल मीडिया की चुनाव नतीजों को प्रभावित करने की क्षमता का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाएगा।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)